# जैनश्रमण की रोग-प्रतिरक्षात्मक स्वावलम्बी जीवनशैली

*डॉ. चंचलमल चोरडिया*

संयम-जीवन की साधना हेतु स्वास्थ्य का समीचीन रहना आवश्यक है। श्रमण-श्रमणी निर्दोषतापूर्वक नीरोग किस प्रकार रह सकते हैं, इस हेतु विविध स्वावलम्बी उपायों की चर्चा डॉ. चोरडिया ने अपने आलेख में की है। रोगों से बचाव के साथ उनकी निर्दोष पद्धति से स्वयं चिकित्सा कर लेना श्रमण-श्रमणियों के लिए तो उपादेय है ही, श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी उपादेयता असंदिग्ध है। **-सम्पादक**

## साधु-जीवन की सीमाएँ

आत्मार्थी साधक आत्म-शोधन को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है न कि शरीर पोषण को। वह अपने मन, वचन और काया पर पूर्ण नियन्त्रण रख प्रत्येक प्रवृत्ति को सम्यक् प्रकार से करने का जीवन पर्यन्त संकल्प लेता है। पांच समिति और तीन गुप्ति रूपी आठ प्रवचन माताएं उसकी साधना में सुरक्षा कवच की भांति सहयोग करती हैं। वह शरीर का तब तक ही खयाल रखता है, जब तक शरीर आत्मोथान में सहयोग देता है। क्योंकि मोक्ष-प्राप्ति तक आत्मा शरीर के बिना नहीं रह सकती। अतः शरीर की उपेक्षा कर साधक साधना भी नहीं कर सकता। अधिकांश शारीरिक रोगों का मुख्य कारण प्रायः जाने-अनजाने प्राप्त 10 प्राणों एवं 6 पर्याप्तियों का असंयम, दुरुपयोग, क्षमता के अनुरूप उपयोग न करना अथवा प्रकृति के स्वास्थ्य संबंधी सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा करना होता है। आहारादि के संयम से शरीर में रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ काफी कम हो जाती हैं और यदि रोग की स्थिति हो भी जाती है तो आहारादि के संयम से, पुनः शीघ्र स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। जैन श्रमण का जीवन यथासंभव पूर्ण रूप से संयमित, नियमित, स्वावलंबी एवं पाप रहित होता है। वह तीन करण और तीन योग से हिंसा का त्यागी होता है। अर्थात् मन, वचन एवं काया द्वारा पाप प्रवृत्तियों से बचता हुआ, 42 दोष टाल गृहस्थों से निर्दोष, अपनी निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साधक अनावश्यक बाह्य साधनों का उपयोग भी नहीं लेता है। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों का यथा संभव पालन करते हुए, प्राणिमात्र को बिना कष्ट पहुँचाने की भावना एवं आचरण में सजगता रखते हुए स्वयं का जीवन चलाने हेतु आवश्यक प्रवृतियाँ भी पूर्ण सावधानी पूर्वक करता है। सच्चा श्रमण वर्ग अपनी साधना में उपचार हेतु अनावश्यक दोष लगाना नहीं चाहता और न अपने शिष्यों अथवा सहयोगियों से उपचार हेतु अनावश्यक सेवा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लेकर परावलंबी जीवन जीना चाहता है। ऐसे साधकों का जीवन प्रायः रोग ग्रस्त नहीं होता। परन्तु फिर भी प्राण और पर्याप्तियों का पूर्ण संयम न रखने से, पूर्व उपार्जित असातावेदनीय कर्मों के उदय से, वर्तमान में उपलब्ध अशुद्ध खान-पान, प्रदूषण, पर्यावरण, दुर्घटना, आसपास के दूषित वातावरण के प्रति सजगता और सावधानी न रखने के प्रभाव से अथवा शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता कमजोर हो जाने से रोग होने की संभावना रहती है। अतः उनके साथ भी जब तक जीवन है, कम अथवा ज्यादा सहनशक्ति एवं मनोबल की क्षमताओं के अनुरूप स्वास्थ्य की समस्याएँ जुड़ी रहती हैं।

**स्वस्थ कौन?**

स्वस्थ का मतलब विकार मुक्त अवस्था। जब ये विकार शरीर में होते हैं तो शरीर, मन में होते हैं तो मन, भावों में होते हैं तो भाव और आत्मा में होते हैं तो आत्मा विकारी अथवा रोगी कहलाती है। स्वस्थता तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है। जब शरीर, मन, इन्द्रियाँ और आत्मा ताल से ताल मिला कर सन्तुलन से कार्य करते हैं, तब ही अच्छा स्वास्थ्य कहलाता है। जिसका शरीर, मन एवं आत्मा विकारों से मुक्त हो, वही पूर्ण स्वस्थ होता है। जितने-जितने अंशों में साधक इन विकारों से मुक्त होता है, उतना-उतना ही वह स्वस्थ होता है।

**रोग सुरक्षा हेतु स्वावलंबी सुझाव**

प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है, उसका समाधान उसके आस-पास अवश्य होता है। अतः जो रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं उनका बचाव एवं उपचार शरीर में अवश्य होना चाहिये। शरीर का विवेकपूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वस्थ एवं निर्दोष स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। अच्छे स्वास्थ्य हेतु साधु की जीवन शैली कैसी हो, ताकि रोग होने की संभावनाएँ कम से कम हों, इस बात की सामान्य जानकारी प्रत्येक साधक को आवश्यक रूप से होनी चाहिए। ऐसी साधारण चन्द निर्दोष अग्रांकित बातों की सतर्कता रखने से श्रमण वर्ग अपनी साधना में बिना दोष अथवा कम से कम दोषों का सेवन कर, अनेक रोगों से सहज बच सकते हैं एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

**भोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें**

साधक को अपने स्वास्थ्य के अनुकूल ही आहार मिले, सदैव संभव नहीं होता। गृहस्थों के घर जो निर्दोष आहार उपलब्ध होता है, उसी को ग्रहण कर समभाव से जीवन निर्वाह करना पड़ता है। परन्तु भोजन कैसे करना? कब करना? कितना करना? उसके स्वयं के विवेक एवं नियंत्रण पर निर्भर करता है। भूख लगने पर भोजन करना जितना आवश्यक होता है, उससे भी अधिक उसका पूर्ण पाचन आवश्यक होता है। इसलिए यथासंभव साधक को ऐसा ही भोजन करना चाहिए जिसका सरलता से पूर्ण पाचन हो सके अथवा जो आहार ग्रहण किया जाए उसको पचाने हेतु आवश्यक सतर्कता रखी जाए। अतः साधक को पाचन के नियमों पर विशेष

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान देना एवं उनका पालन करना आवश्यक है। प्रथमतः भोजन को पूर्ण चबा-चबा कर खाना चाहिए ताकि दांतों का कार्य आंतों को न करना पड़े। दूसरा विवेक यह कि भोजन के तुरन्त पश्चात् पानी नहीं पीना चाहिए। विशेष रूप से सायंकालीन भोजन के पश्चात् इसका पालन कठिन होता है। अतः संभव हो तो उन्हें सायंकालीन भोजन का त्याग कर देना चाहिए। भोजन के तुरन्त बाद में पानी पीने से पेट की जठराग्नि शान्त हो जाती है और आमाशय में भोजन को पाचन के लिए आवश्यक पेन्क्रियाज, लीवर, गाल ब्लेडर आदि से मिलने वाले पाचक रस पतले हो जाते हैं। जिससे आमाशय में भोजन का पूर्ण क्षमता से पाचन नहीं हो सकता। अपचा भोजन अनेक रोगों का प्रमुख कारण होता है।

तीसरी बात यह है कि प्रायः श्रमणों को शारीरिक श्रम की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। अतः उनके भोजन पाचन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। अतः उनके दो आहार के बीच में कम से कम आठ घंटे का अन्तराल अवश्य होना चाहिए। इसके साथ ही निहार के आसन में एवं सूर्य स्वर में भोजन करने से पाचन अच्छा होता है। भोजन करने के पश्चात् कुछ समय व्रजासन में बैठने से भी पाचन में सहायता मिलती है। हमारे ऋषि मुनियों ने कहा- ''एक समय खाने वाला योगी, दो समय खाने वाला भोगी, तीन समय खाने वाला रोगी होता है।'' श्रमण वर्ग को इस तथ्य की गहराई में जाकर आचरण करना चाहिए। यदि ऐसा संभव न हो तो साप्ताहिक उपवास अवश्य करना चाहिए। उपवास के समय शरीर अपने दोष (वात, पित्त, कफ) को खाता है और शरीर स्वस्थ होने लगता है।

**अन्य ध्यान रखने योग्य तथ्य**

1. सर्दी और गर्मी का कानों पर अपेक्षाकृत प्रथम एवं अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः जहां साधारण वातावरण से अधिक ठण्डे या गरम वातावरण में जाना हो तो जुकाम होने की संभावना रहती है। उदाहरण के लिए गर्म हवाओं अथवा लू में विचरण करते समय, सर्दी के समय अन्दर से बाहर आते समय, सर्दी से पुनः गरम वातावरण में जाते समय परिवर्तित तापमान से प्रभावित हवा का कान के पर्दों से तुरन्त स्पर्श न हो- इसका ध्यान रखना चाहिए। सावधानी के लिए ऐसे समय यदि कानों में रुई रखी जावे तो, वातावरण में परिवर्तन से होने वाले रोग प्रायः नहीं होते।
2. प्रातःकाल दोनों हथेलियों को आपस में मिला, दोनों अंगूठों से नाक के दोनों नथूनों को पूरा दबाकर, मुंह को फूलाकर, श्वास को बाहर निकालने का जितना सहन हो सके नियमित प्रयास करने से गले, नाक एवं कान में जमे विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं। संबंधित कोशिकाएँ सक्रिय होने लगती हैं तथा इनसे संबंधित रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। जुकाम, श्वसन, थायराइड एवं पेराथायराइड, गले तथा कान के रोग प्रायः नहीं होते हैं।
3. गले से कबूतर की भांति आवाज निकालने का प्रयास करने से गला साफ होता है, जिससे गले एवं श्वसन तंत्र बराबर कार्य करने लगता है। इससे खांसी, दमा, आवाज में भारीपन आदि रोगों में शीघ्र आराम

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है।

4. गले और गर्दन को अलग-अलग स्थितियों में बायें-दायें, ऊपर-नीचे, सभी तरफ जितना सहन हो सके, तनाव की स्थिति में रख, जितना दीर्घ णमो का उच्चारण कर सके, उतना करने से अथवा उस स्थिति में मौन अट्टाहास करने से गर्दन की जकड़न दूर होती है और गर्दन संबंधी रोग ठीक होते हैं। थायराइड और पेराथायराइड ग्रन्थियाँ और विशुद्धि चक्र सक्रिय हो बराबर कार्य करने लग जाते हैं।

5. शरीर के असक्रिय, कमजोर भाग पर हथेली से (Clockwise) घड़ी की दिशा में मसाज करने से उस भाग की सक्रियता बढ़ने लगती है और वे अंग उपांग बराबर कार्य करने लग जाते हैं। इसी प्रकार दर्द, पीड़ा, खुजली अथवा जलन वाले भाग पर घड़ी की उल्टी दिशा में (Anti Clockwise ) शरीर को स्पर्श करते हुए हथेली को घुमाने से रोग में तुरन्त राहत मिलती है। उदाहरण के लिए पेन्क्रियाज पर घड़ी की दिशा में मसाज करने से मधुमेह तथा पेट पर मसाज करने से कब्जी ठीक होती है तथा दस्त होने की स्थिति में पेट पर हथेली से घड़ी की उल्टी दिशा में मसाज करने से दस्तें बंद हो जाती है।

6. विधि सहित नियमानुसार भावना पूर्वक वंदना एवं प्रतिक्रमण साधक का नियमित व्यायाम होता है। उग्र विहारी श्रद्धेय श्री गुणवंत मुनि जी म.सा. के अनुभवों के अनुसार विहार चर्या के पश्चात् वंदना करने से विहार की थकान दूर होती है।

7. **आसन-** साधक को यथा संभव सीधी कमर रखकर वज्रासन, पद्मासन एवं सुखासन में ही बैठना चाहिए। जिससे शरीर का संतुलन बना रहता है एवं वीर्य विकार संबंधी रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती है। गोदुहासन में अपनी क्षमतानुसार बैठने से शरीर का स्नायुतंत्र सक्रिय रहता है और एड़ी, घुटने, पैर एवं पीठ के रोग परेशान नहीं करते।

8. **प्राणायाम-** सम्यक् प्रकार से श्वसन क्रिया को संचालित एवं नियन्त्रित करने की विधि को प्राणायाम कहते हैं। दो श्वासों के बीच का समय ही जीवन होता है। प्रत्येक व्यक्ति के श्वासों की संख्या निश्चित होती है। जो व्यक्ति आधा श्वास लेता है वह आधा जीवन ही जीता है। प्राणायाम से शरीर में प्राण ऊर्जा उत्प्रेरित, संचारित, नियमित और संतुलित होती है। जिस प्रकार बाह्य शरीर की शुद्धि के लिये स्नान की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार शरीर के आन्तरिक अवयवों की शुद्धि के लिये प्राणायाम का बहुत महत्त्व होता है।

9. **प्रातःकालीन उदित सूर्य देखने से लाभ-** सूर्य दर्शन अर्थात् सूर्य को देखना। सूर्योदय के समय वायुमण्डल में अदृश्य परा बैंगनी किरणों (Ultra Violet Rays) का विशेष प्रभाव होता है, जो विटामिन डी का सर्वोत्तम स्रोत होती है। ये किरणें रक्त में लाल और श्वेत कणों की वृद्धि करती हैं। श्वेत कण बढ़ने से शरीर में रोग प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ने लगती है। परा बैंगनी किरणें तपेदिक, हिष्टिरिया, मधुमेह और महिलाओं के मासिक धर्म-संबंधी रोगों में बहुत लाभकारी होती हैं। ये शरीर में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विकारनाशक शक्ति पैदा करती हैं। इससे आंतों में अम्ल क्षार का संतुलन एवं शरीर में फासफोरस कैलशियम का संतुलन बना रहता है। नेत्र ज्योति बढ़ती है तथा शरीर के सभी आवश्यक तत्त्वों का पोषण होता है। हृदय रोग, मस्तिष्क विकार, आंखों के विकार आदि अनेक व्याधियां दूर होती हैं। प्रातःकालीन सूर्यकिरणें जीवनी शक्ति बढ़ाती हैं, स्नायु दुर्बलता कम करती हैं, पाचन और मल निष्कासन की क्रियाओं को बल देती हैं, पेट की जठराग्नि प्रदीप्त करती हैं, रक्त परिभ्रमण संतुलित रखती हैं, हड्डियों को मजबूत बनाती हैं, रक्त में कैलशियम, फासफोरस और लोहे की मात्रा बढ़ाती हैं, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव बनाने में सहयोग करती हैं।

10. **ध्यान-** ध्यान शरीर, मन एवं मस्तिष्क को स्वस्थ रखने का अच्छा माध्यम है। ध्यान से आभा मण्डल शुद्ध होता है, हानिकारक तरंगें दूर होती हैं। ध्यान की साधना शांत, एकान्त, स्वच्छ एवं निश्चित स्थान पर निश्चित समय करने से ज्यादा लाभ होता है। ध्यान के लिए मौन आवश्यक होता है। पहले शरीर की स्थिरता, फिर दृढ़ता और धैर्य के बिना ध्यान संभव नहीं हो सकता।

11. **आत्म-विकारों की शुद्धि-** आत्म-विकारों को दूर करने हेतु साधक को अपना सोच सकारात्मक, पूर्वाग्रहों से रहित, 'गुणिषु प्रमोदं' से युक्त रखना चाहिए। भौतिक कामनाओं से निर्लिप्त रहने का अभ्यास करना चाहिए। नियमित स्वाध्याय, ध्यान, मौन एवं कायोत्सर्ग में अधिकाधिक अपने अमूल्य समय का सदुपयोग करना चाहिए। व्रतों में लगे दोषों की नियमित समीक्षा एवं गर्हाकर प्रमोदभाव से प्रायश्चित्त लेना चाहिए। स्वाध्याय मात्र वाचना और पर्यटना तक ही सीमित न हो, अपितु उसके द्वारा की जाने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति तथा उच्चारित शब्दों का अनेकान्त दृष्टि से चिंतनकर उसके मर्म की अनुप्रेक्षा करनी चाहिए। उसके अनुरूप अपने आचरण की समीक्षा करनी चाहिए। ऐसा करने से जीवन में सरलता, सहजता, संतोष, विनय, सहनशीलता, निर्लिप्तता आदि गुण विकसित होते हैं। जिससे साधक आत्मिक, मानसिक और शारीरिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहता है।

12. **मुस्कान के लाभ-** प्रातः 15-20 मिनट मुस्कुराता हुआ चेहरा रखने का अभ्यास करने से मानसिक तनाव, आवेग, अधीरता, भय, चिंता आदि दूर होते हैं। सकारात्मक सोच विकसित होता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ सक्रिय होती हैं जिससे शुद्ध हारमोन्स का निर्माण होता है। मानसिक संतुलन बना रहता है। दुःखी, चिन्तित, तनावग्रस्त, भयभीत, निराश, क्रोधी आदि मुस्करा नहीं सकते और यदि उन्हें किसी भी कारण से चेहरे पर मुस्कराहट आती है तो तनाव, चिंता, भय, दुःख, क्रोध आदि उस समय उनमें रह नहीं सकते, क्योंकि दोनों एक दूसरे के विरोधी स्वभाव के होते हैं। अतः किसी भी आकस्मिक स्थिति में रोग सहनशक्ति के बाहर हो तथा दवा लेना आवश्यक हो उस समय चन्द मिनटों तक मुस्कराता चेहरा बनाने से तुरन्त राहत मिलती है। फिर चाहे निम्न या उच्च रक्तचाप अथवा मधुमेह आदि कोई भी रोग क्यों न हो, दवा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

13. **सही स्वर संचालन-** जब श्वसन क्रिया बांयें नथुने से होती है तो उसे 'चंद्र स्वर', जब दाहिने नथूने से होती है तो 'सूर्य स्वर' और जब दोनों नथूनों से चलती है तो सुषुम्ना स्वर का चलना कहा जाता है।

**गर्मी संबंधी रोग-** गर्मी, प्यास, बुखार, पित्त संबंधी रोगों में चन्द्र स्वर चलाने से शरीर में शीतलता बढ़ती है, जिससे गर्मी से उत्पन्न असंतुलन दूर हो जाता है। आवेग, क्रोध, उत्तेजना, उच्च रक्त चाप, मानसिक अधीरता में चन्द्र स्वर चलाने से शीघ्र लाभ होता है।

**सर्दी संबंधी रोग-** सर्दी, जुकाम, खांसी, दमा आदि कफ संबंधी रोगों में सूर्य स्वर अधिकाधिक चलाने से शरीर में गर्मी बढ़ती है, सर्दी का प्रभाव दूर होता है।

**आकस्मिक रोग-** जब रोग का कारण समझ में न आये और रोग की असहनीय स्थिति हो, ऐसे समय रोग का उपद्रव होते ही, जो स्वर चल रहा है उसको बन्द कर विपरीत स्वर चलाने से तुरन्त राहत मिलती है।

14. **गोदुहासन में नमस्कार मुद्रा-** 5 से 10 मिनट नमस्कार मुद्रा में गोदुहासन में बैठकर दिन में पांच-सात बार दीर्घ स्वर में ओम् अथवा नमस्कारमंत्र के एक-एक पद का कुछ समय तक लम्बा उच्चारण करने से शरीर बायें-दायें संतुलित होता है जिससे पैर, मेरुदण्ड, मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान संबंधी रोग होने की सम्भावनाएँ नहीं रहती हैं।

15. **अंग व्यायाम-** शरीर के अंग, उपांग तथा प्रत्येक भाग की मांसपेशियों को प्रतिदिन कम से कम एक बार अथवा आवश्यकतानुसार जितना संभव हो आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे, घुमाने, खींचने, दबाने, मसलने, सिकोड़ने और फैलाने से, सम्बन्धित भाग की मांसपेशियाँ सजग और सक्रिय हो जाती हैं। परिणामस्वरूप उस भाग में रक्त परिभ्रमण नियमित होने लगता है। आँख, कान, नाक, मुँह, गला, छाती, पेट, हाथ, पैर, कमर और शरीर के मुख्य जोड़ों के अंग-व्यायाम से वहाँ पर प्राण ऊर्जा का प्रवाह बराबर होने लगता है।

16. **उड्डियान बंध-** श्वास को बाहर निकालकर पेट को कमर की तरफ जितना सिकोड़ सकें, बाह्य कुम्भक करने की स्थिति को उड्डियान बंध कहते हैं। खाली पेट इस क्रिया से आमाशय का सम्पूर्ण भाग स्पंज की भांति निचोड़ा जाता है। जिससे जमा अथवा रुका हुआ रक्त पुनः प्रवाहित होने लगता है। फलतः पेट के सभी अंग सक्रिय होने लगते हैं एवं पेट के रोग ठीक होते हैं।

17. **मूल बंध-** मल द्वार को ऊपर खींचकर संकुचित कर जितनी देर रख सकें, रखने की शारीरिक स्थिति को मूल बंध कहते हैं। इस बंध से आंतों और मल मूत्र संबंधी अंग बराबर कार्य करते हैं तथा उनसे संबंधित रोगों में लाभ होता है।

18. **प्रभावशाली रीढ़ के घुमावदार व्यायाम-** मनुष्य को छोड़कर सभी प्राणियों की रीढ़ की हड्डी क्षितिज के समानान्तर होती है। अतः चलने-फिरने में उनके मणके स्वयं हलचल में आ जाते हैं। परिणाम स्वरूप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उनकी सुषुम्ना नाड़ी की सुप्त शक्तियाँ स्वयं जागृत हो जाती हैं। यही कारण है कि अन्य जीवों को मनुष्य की अपेक्षा स्नायु सम्बन्धी रोग कम होते हैं। यदि साधक भी रीढ़ के विविध घुमावदार आसनों को नित्य विधिपूर्वक करलें तो उनमें भी सुषुम्ना शक्तियाँ जागृत होने लगती हैं, ऊर्जा चक्र सक्रिय होने लगते हैं एवं स्नायु संस्थान ताकतवर होने से, स्नायु संबन्धी रोगों के होने की संभावनाएं बहुत कम हो जाती हैं। इस व्यायाम को नियमित करने से नाभि अपने स्थान पर रहती है। कब्ज, गैस, थकावट, आलस्य, अनिद्रा, मोटापा, मधुमेह एवं स्नायु संबंधी अन्य रोगों में लाभ होता है। मेरुदण्ड के मणके अपने स्थान पर रहते हैं।

19. **उषापान**- बिना कुछ खाए अथवा पिए एवं दांतुन किए बिना, प्रातःकाल अपने पेट की क्षमतानुसार सर्व प्रथम भर पेट पानी पीने को उषापान कहते हैं। उषापान से आमाशय और आंतों की सफाई होती है। जिससे पाचन संबंधी रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं और यदि असावधानी के कारण रोग हो गए हों तो भी बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर रोग, कब्ज, आंत्ररोग, मोटापा, गुर्देसंबंधी रोग, यकृत रोग, नासिका से रक्त स्राव, कमर दर्द, आंख, कान आदि विभिन्न अंगों के रोगों से राहत मिलती है। इससे नेत्र ज्योति में वृद्धि एवं बुद्धि निर्मल होती है।

20. **शिवाम्बु सेवन से लाभ**- दुनिया में रोग-मुक्त करने के लिए हजारों दवाइयां उपलब्ध हैं, जिनका रोगों की रोकथाम, उपचार एवं परहेज के रूप में सेवन किया जाता है। सभी दवाओं का शरीर के अंगों पर अलग-अलग अच्छा अथवा दुष्प्रभाव पड़ता है। आंख के रोगों की दवा कान में नहीं डाली जा सकती। नाक में डालने वाली दवा मुंह में नहीं ली जा सकती। परन्तु शिवाम्बु स्वयं के द्वारा स्वयं के शरीर से रोगों की आवश्यकतानुसार निर्मित जन्म से उपलब्ध ऐसी दवा है, जिसका प्रयोग चाहे कान हों या आंख, नाक हो या मुंह, त्वचा के रोग हों अथवा शरीर की आन्तरिक शुद्धि के लिए दिया जाने वाला एनिमा ही क्यों न हों, सभी में स्वस्थ रहने एवं रोग मुक्ति हेतु बेहिचक प्रयोग किया जा सकता है।

शिवाम्बु के सेवन से शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ती है, जिससे वायरस एवं मौसम परिवर्तन संबंधी रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। शिवाम्बु क्षारीय प्रकृति का होने से इसके सेवन से आंतों एवं रक्त की सफाई होने में मदद मिलती है। अतः साधक को प्रातःकाल मल-त्याग के पूर्व शिवाम्बु सेवन करना चाहिए। उसके 15-20 मिनट पश्चात् उषापान कर मल त्याग हेतु जाने से कब्जी, गैस आदि रोग होने की संभावनाएँ कम रहती हैं। भोजन के पश्चात् शिवाम्बु का सेवन करने से पाचन अच्छा होता है। हिलते हुए दांतों को पुनः मजबूत करने के लिये तथा दांतों संबंधी अन्य रोगों में ताजे शिवाम्बु को मुंह में भरकर दिन में तीन-चार बार पंद्रह बीस मिनट घुमाने से हिलते हुए दांत ठीक हो जाते हैं। सांप-बिच्छु अथवा शरीर में अन्य ज़हर फैलने पर शिवाम्बु पीने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। आंखों के सभी रोगों में, नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए, चश्मे के नम्बर कम करने के लिए, रोजाना तीन-चार बार आंखों में ताजे शिवाम्बु को तीन चार मिनट ठंडा होने के पश्चात् डालने से काफी लाभ होता है। यदि किसी साधक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का पेशाब बंद हो तो, अन्य स्वस्थ साधक का शिवाम्बु पिलाने से मूत्र में आया अवरोध दूर हो जाता है। उसके पश्चात् रोग ग्रस्त साधक अपने स्वयं के शिवाम्बु का सेवन कर सकता है।

21. **मौन हंसी द्वारा रोगोपचार**- हँसी से शरीर में वेग के साथ ऑक्सीजन का अधिक संचार होने से मांसपेशियाँ सशक्त होती हैं। जमे हुए विजातीय, अनुपयोगी, अनावश्यक तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं, जिससे विशेष रूप से फेंफड़े और हृदय की कार्य क्षमता बढ़ती है। अवरोध समाप्त होने से रक्त का प्रवाह संतुलित होने लगता है। फलतः हृदय और श्वसन संबंधी रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं और यदि इनसे संबंधित कोई रोग हो तो तुरन्त राहत मिलने लगती है। प्रातःकाल चंद मिनटों तक एकान्त में, स्वच्छ वातावरण में बैठ साधक मौन हंसी द्वारा हास्य योग द्वारा स्वयं को स्वस्थ रख सकते हैं।

22. **एकाग्रता से रोगोपचार**- प्रातःकाल जितना जल्दी उठ सकें, निद्रा त्यागकर शांत, एकान्त खुले स्वच्छ वातावरण में आंखें एवं मुंह बंद कर, दर्द अथवा शरीर के कमजोर भाग पर यदि दबाव दे सकते हैं तो दबाव दें, अन्यथा उस स्थान पर हथेली से मसाज करने, अगर यह भी संभव न हो तो उस स्थान पर हथेली से स्पर्श कर मौन हंसी -हंसने से शरीर के उस भाग में चेतना का प्रवाह अधिक होने लगता है। जिससे शरीर का वह भाग सक्रिय होने लगता है। चन्द दिनों तक नियमित इस प्रयोग से चमत्कारी परिणाम आते हैं तथा संबंधित अंग सक्रिय हो बराबर कार्य करने लग जाता है। पेन्क्रियाज पर दबाव देने से चन्द दिनों में ही मधुमेह का रोग भी नियन्त्रित हो जाता है। हृदय पर मसाज करने से हृदय बराबर कार्य करने लगता है।

23. **मेथी स्पर्श रोग निवारण**- मेथी वात और कफ का शमन करती है। अतः जिस स्थान पर मेथी का स्पर्श किया जाता है, वहाँ वात और कफ विरोधी कोशिकाओं का सृजन होने लगता है, शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। दर्द वाले अथवा कमजोर भाग में विजातीय तत्त्वों की अधिकता के कारण शरीर के उस भाग का आभा मंडल विकृत हो जाता है। मेथी अपने गुणों वाली तरंगें शरीर के उस भाग के माध्यम से अन्दर में भेजती है। जिसके कारण शरीर में उपस्थित विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं, प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है। फलतः रोगी स्वस्थ होने लगता है। जैन श्रमण के लिए सचित्त मेथी का उपयोग वर्जित होने से वे अचित्त मेथी स्पर्श कर उपर्युक्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

24. **रक्त शुद्धि का सरल उपाय-तेल गंडूस**- लगभग एक चम्मच सूर्यमुखी तेल को 15 से 20 मिनट मुंह में अन्दर ही अन्दर घुमाकर थूकने से रक्त की शुद्धि होती है। जिससे रक्त-विकार से संबंधित, उच्च एवं निम्न रक्तचाप, हृदय, गुर्दे, त्वचा आदि सभी प्रकार के रोग चन्द दिनों में ही दूर होने लगते हैं। हड्डियां और दांत भी मजबूत होने लगते हैं।

25. **शारीरिक संतुलन क्यों आवश्यक?**- हमारा शरीर दाहिने एवं बायें बाह्य दृष्टि से एक जैसा लगता है। परन्तु उठने-बैठने-खड़े रहने, सोने अथवा चलते-फिरते समय प्रायः हम अपने बायें और दाहिने भाग पर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बराबर वजन नहीं देते। जैसे खड़े रहते समय किसी एक तरफ थोड़ा झुक जाते हैं। बैठते समय सीधे नहीं बैठते। सोते समय हमारे पैर सीधे और बराबर नहीं रहते। स्वतः किसी एक पैर को दूसरे पैर की सहायता और सहयोग लेना पड़ता है। फलतः पैर के ऊपर दूसरा पैर चला जाता है। ऐसा क्यों होता है? दोनों पैरों के बराबर न होने अर्थात् एक पैर बड़ा और दूसरा पैर छोटा होने से प्रायः ऐसा होता है। अतः प्रत्येक साधक को पैरों, मेरुदण्ड एवं गर्दन को संतुलित करने का ढंग, जो बहुत ही सरल है अवश्य सीख लेना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं कर सके। जिससे एडी से लगाकर गर्दन तक स्नायु संबंधित रोगों में तुरन्त राहत मिलती है।

26. **नाभि संतुलन का महत्त्व-** यदि नाभि अपने स्थान से अन्दर की तरफ हो जाए, उस व्यक्ति का वजन दिन प्रतिदिन घटता चला जाता है और यदि किसी कारण नाभि अपने स्थान से बाहर की तरफ हो जाती है तो शरीर का वजन न चाहते हुए भी अनावश्यक बढ़ने लगता है। किसी कारण नाभि यदि अपने स्थान से ऊपर की तरफ चढ़ जाती है तो खट्टी डकारें, अपच आदि की शिकायतें रहने लगती हैं। कब्जी भी हो सकती है। परन्तु यदि नाभि अपने स्थान से नीचे की तरफ चली जाती है तो दस्तों की शिकायत हो जाती है। इसी प्रकार नाभि कभी दायें, बायें अथवा तिरछी दिशाओं में भी हट जाती है, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग होने लगते हैं। सारे परीक्षण एवं पेथालोजिकल टेस्ट करने के पश्चात् भी यदि रोग पकड़ में नहीं आता हो तो, ऐसे में नाभि केन्द्र को अपने केन्द्र में लाने से तुरन्त राहत मिलने लग जाती है।

**उपसंहार**

स्वास्थ्य-विज्ञान जैसे विस्तृत विषय को सम्पूर्ण रूप से इस लेख में अभिव्यक्त करना बड़ा कठिन है। फिर भी गत वर्षों के अनुभव से मैंने जो परिणाम देखे उसके आधार पर ही कथन करने का मेरा प्रयास है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उपर्युक्त तथ्यों का महत्त्व समझकर यदि साधक अपने विवेक से सजगता पूर्वक स्वयं के लिए आवश्यक नियमों का पालन करना प्रारम्भ कर दे तो अनेक रोगों से सहज बच सकता है, जिसके लिए उपचार करवाते समय उसको अपने व्रतों में दोष लगाकर प्रायश्चित्त लेना पड़ता है तथा आचरण करने से साधक बिना दवा स्वस्थ एवं निर्दोष स्वावलम्बी जीवन जी सकता है। मृत्यु के लिए सौ सर्पों के काटने की आवश्यकता नहीं होती। एक सर्प का काटा व्यक्ति भी कभी-कभी मर सकता है। ठीक उसी प्रकार कभी-कभी बहुत छोटी लगने वाली हमारी गलती अथवा उपेक्षावृत्ति भी भविष्य में रोग का बहुत बड़ा कारण बन सकती है। **''आरोग्य आपका'', ''स्वस्थ रहें या रोगी- फैसला आपका''** तथा **''शरीर स्वयं का चिकित्सक''** जैसी पुस्तकें अध्ययन करने से अन्य संबंधित जानकारियाँ एवं शंकाओं के समाधान प्राप्त किए जा सकते हैं।

*चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)*

*फोन : 0291-2621454, 94141 34606 (मोबाइल)*

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com

Website: www.chordiahealthzone.com

Jain Educationa International | For Personal and Private Use Only | www.jainelibrary.org